इकाई 10 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस: नरम दल और गरम दल

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विकास और प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेतृत्व की भूमिका पर विचार करेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप:

- कांग्रेस के प्रारंभिक स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि कांग्रेस में किस प्रकार नरम दलीय और गरम दलीय, दो विपरीत दृष्टिकोण उभर कर आए।
- यह जान सकेंगे कि, दोनों दलों के मध्य मतभेद के कौन-कौन से बिंदू थे।
- यह समझ सकेंगे कि, नरम दल और गरम दल के आपसी मतभेदों ने किस प्रकार सन् 1907 में कांग्रेस के विभाजन की परिस्थितियाँ उत्पन्न की।
- यह जान सकेंगे कि, किस प्रकार इस फूट ने कांग्रेस तथा राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित किया।

10.1 प्रस्तावना

इकाई 9 में आप पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार तथा किन कारणों व परिस्थितियों में सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। कांग्रेस के घोषित उद्देश्य थे:

- देश के विभिन्न भागों के राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास,
- जाति, धर्म और क्षेत्र की सीमाओं में बंधे बिना राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास तथा उसका सुदृढ़ीकरण, तथा
- देश के कल्याण के लिए जनमत को जागृत और संगठित करना।

प्रारंभिक वर्षों, 1885–1905 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विकास हुआ। इस काल में कांग्रेस पर उदारवादी नेताओं का प्रभुत्व रहा। धीरे-धीरे एक ऐसा दल उभरकर आया जो कि उदारवादी नीतियों से सहमत नहीं था और जिसकी आस्था आक्रामक कार्यक्रम में थी। अपने आक्रामक दृष्टिकोण के कारण यह दल गरम दल कहलाया।

ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए दोनों ही दल भिन्न-भिन्न राजनैतिक तरीकों में विश्वास करते थे। उनके पारस्परिक मतभेदों के कारण ही सन् 1907 में कांग्रेस का विभाजन हुआ। इस इकाई में हम कांग्रेस के इस आरंभिक काल का अध्ययन करेंगे और यह भी देखेंगे कि किस प्रकार कांग्रेस के विभाजन ने राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित किया।

10.2 कांग्रेस का संयोजन

सन् 1885 में बंबई में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ और सन् 1886 में जब इसका दूसरा अधिवेशन कलकत्ते में हुआ तब तक इसका स्वरूप राष्ट्रीय हो गया था। सन् 1885 में कुल 72 प्रतिनिधियों ने कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया था, जबकि 1886 के अधिवेशन में कुल प्रतिनिधियों की संख्या 439 थी। इन प्रतिनिधियों को विभिन्न स्थानीय संगठनों व इकाइयों ने चुनकर भेजा था। इस अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया था कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन देश के किसी भी भाग में हुआ करेगा।

10.2.1 मध्यवर्गीय संगठन

चूंकि कांग्रेस पूरे देश का प्रतिनिधित्व करती थी इसलिए इसमें सभी जातियों, धर्मों, पेशों व्यवसायों तथा सभी प्रांतों के लोगों का समावेश होना आवश्यक था। लेकिन इस प्रकार की व्यापक परिभाषा या सतही वर्णन इसका सही स्वरूप बताने में असमर्थ है। वास्तव में इसमें विभिन्न जातियों, धर्मों, व्यवसायों, पेशों तथा प्रांतों के लोगों का प्रतिनिधित्व बहुत असमान अनुपात में था। विभिन्न वर्गों में, शिक्षित मध्यम वर्ग के लोग ही इसमें सबसे ज्यादा थे। विभिन्न पेशों में, सबसे ज्यादा वकील इसके सदस्य थे। जाति की दृष्टि से ब्राह्मणों की संख्या इसमें अधिक थी। जैसा कि अनिल सील ने अपनी पुस्तक द इमरजेन्स ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म (कैम्ब्रिज, 1968) में लिखा है, प्रांतों में बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास प्रेसिडेंसियों ने ही इसमें प्रमुख रूप से भाग लिया था। आम आदमी इससे बाहर ही रहा। इसी प्रकार भूमि से जुड़ा वर्ग इससे विलग रहा। इस तरह कुल मिलाकर कांग्रेस मध्यवर्गीय संस्था ही रही। यदि हम कांग्रेस के प्रारंभिक अधिेशनों में सम्मिलित प्रतिनिधियों की संख्या का परीक्षण करेंगे तो इस कथन की पुष्टि हो जाएगी

तालिका 1
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्यों का संयोजन: 1885-1888

अधिवेशन का स्थान व वर्ष	वकील	पत्रकार	डॉक्टर	अन्य	योग
बंबई 1885	39	14	01	18	72
कलकत्ता 1886	166	40	16	212	434
मद्रास 1887	206	43	08	350	607
इलाहाबाद 1888	435	73	42	698	1248

जैसा कि तालिका-1 से स्पष्ट है, कांग्रेस के पहले अधिवेशन में आधे सदस्य वकील थे, और आगे भी कांग्रेस के अगले तमाम अधिवेशनों में वकीलों का प्रतिनिधित्व कुल सदस्यों की संख्या के तिहाई से अधिक रहा। पत्रकारों, डॉक्टरों तथा अध्यापकों की संख्या भी काफी रही। पहले अधिवेशन में केवल दो अध्यापक थे परन्तु चौथे अधिवेशन में उनकी संख्या बढ़कर 50 हो गई थी। बहुत से ऐसे भी थे जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से इसमें भाग नहीं लिया, किंतु इस आंदोलन के प्रति उनकी भी सहानुभूति थी। यद्यपि पुरातन आभिजात्य वर्ग (जमींदार, जागीरदार व राजा आदि) की जन-कार्यों में दिलचस्पी नहीं थी फिर भी कांग्रेस ने उनका समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया। यह कदम इसलिए उठाया गया था क्योंकि राजाओं और आभिजात्य वर्ग का समर्थन इस बात का परिचायक होता कि ब्रिटिश भारत तथा भारतीय राजाओं के अधीन भारत में एकता है। इससे ब्रिटेन के कंजर्वेटिव (रूढ़िवादी) पर भी अच्छा प्रभाव पड़ सकता था और आंदोलन को चलाने के लिए आवश्यक पूंजी भी उस वर्ग से प्राप्त हो सकती थी।.

10.2.2 कार्य प्रणाली

पहले के कांग्रेस जनों को शांतिपूर्ण एवं संवैधानिक आंदोलन की प्रभावोत्पादकता में पूर्ण विश्वास था। प्रेस तथा वार्षिक अधिवेशन का मंच उनके प्रचार के माध्यम थे। प्रेस के माध्यम से ही पूरे साल कांग्रेस का प्रचार कार्य किया जाता था। अनेक नेता अंग्रेजी या भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों के संपादक थे और वे अपनी लेखनी का प्रभावपूर्ण प्रयोग करते थे। प्रतिवर्ष अधिवेशन का आयोजन कांग्रेस के प्रचार का दूसरा तरीका था। इन सभाओं में सरकार की नीतियों पर विचार-विमर्श किया जाता था तथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्ताव पारित किए जाते थे। इन वार्षिक अधिवेशनों ने मध्यवर्गीय शिक्षित समुदाय तथा सरकार दोनों का ही ध्यान आकर्षित किया। लेकिन सबसे बड़ी कमी यह थी कि यह अधिवेशन साल में एक बार सिर्फ तीन दिन के लिए ही होता था। दो अधिवेशनों के अंतराल में काम करते रहने वाला इसका अपना कोई संगठन नहीं था।

कांग्रेसियों का ब्रिटिश राष्ट्र की आधारभूत न्यायप्रियता और सदाशयता में दृढ़ विश्वास था। वे इस विश्वास को लेकर कार्य कर रहे थे कि यदि इंग्लैंड में अंग्रेजों तक भारत की दशा की सही तस्वीर पहुँच जाती है तो सब कुछ ठीक हो जाएगा। वे समझते थे कि नागरिकों और उनके अधिकारों के बीच नौकरशाही आड़े आ रही है।

इसलिए उनका उद्देश्य भारतीय जनता को जागृत करना था ताकि वो अपने अधिकारों को समझ सकें। यह (कांग्रेस) ब्रिटिश जनता को भारतीयों की कठिनाइयों की जानकारी भी देना चाहती थी और उसे भारत के प्रति अपने कर्त्तव्य की याद भी दिलाती थी। अंग्रेजों तक भारत की दुर्दशा की सही तस्वीर पेश करने के इरादे से प्रमुख भारतीय नेताओं के प्रतिनिधि मण्डल ब्रिटेन भेजे गए।

सन् 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश समिति की स्थापना हुई। अपने प्रचार कार्य के लिए इस समिति ने 1890 में अपने मुख पत्र 'इण्डिया' को शुरू किया।

ब्रिटिश सत्ता तक भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही दादाभाई नौरोजी ने अपनी जिंदगी का एक बड़ा हिस्सा इंग्लैंड में बिताया। वे ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स (ब्रिटिश संसद के निम्न सदन) के लिए चुने गए और वहाँ उन्होंने भारत के शुभचिंतकों का एक प्रभावशाली दल गठित किया।

बोध प्रश्न 1

1 कांग्रेस की स्थापना के समय के तीन प्रमुख उद्देश्यों को लिखिए।

1 ....

2 ....

3 ....

2 क्या कांग्रेस अपने प्रारंभिक वर्षों में एक मध्यवर्गीय संस्था थी? आठ पंक्तियों में इसका उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

10.3 नरम दल (उदारवादी)

अपने पहले चरण (1885-1905) में कांग्रेस का कार्यक्रम बहुत सीमित था। उसकी माँगे हल्के फुल्के संवैधानिक सुधारों, आर्थिक सहायता, प्रशासकीय पुनर्संगठन तथा नागरिक अधिकारों की सुरक्षा तक सीमित थी

10.3.1 माँगे तथा कार्यक्रम

उसकी मुख्य माँगें इस प्रकार थीं:

- प्रांतीय कांउसिलों का गठन,
- इंडियन सिविल सर्विस (आई.सी.एस.) की परीक्षा का इंग्लैंड के साथ ही साथ भारत में भी आयोजन,
- न्यायपालिका का कार्य पालिका से पृथ्क्कीकरण,
- आर्म्स एक्ट को रद्द करना,
- सेना में भारतीयों की कमीशन्ड ऑफीसरों (सैकिण्ड लेफ्टिनेन्ट तथा उससे ऊपर के पद) के पद पर नियुक्ति,
- सैनिक व्यय में कमी, तथा
- भारत के सभी भागों में भूमि के स्थायी बंदोबस्त का प्रचलन

कांग्रेस ने सरकार द्वारा उठाए गए सभी महत्वपूर्ण कदमों और नीतियों पर अपनी राय दी और उसकी गलत नीतियों की आलोचना की तथा उनका विरोध किया।

इन माँगों को हर साल दोहराया गया किंतु सरकार ने इन पर शायद ही कभी ध्यान दिया हो। पहले बीस वर्षों (1885-1905) में कांग्रेस के कार्यक्रम में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उसकी मुख्य माँगें लगभग वही बनी रही जो उसके पहले तीन या चार अधिवेशनों में पेश की गई थीं।

कांग्रेस का यह काल नरम दल का युग (उदारवादियों का युग) कहलाता है। इस काल में नेतागण अपनी माँगें बड़े संयत रूप से रखते थे। वे सरकार को नाराज नहीं करना चाहते थे और इस बात का भी खतरा मोल नहीं लेना चाहते थे कि सरकार नाराज होकर उनकी गतिविधियों का दमन करे। सन् 1885 से सन् 1892 तक उनकी मुख्य माँगें यही थीं कि, विधान परिषदों का विस्तार व सुधार हो, कांउसिल के सदस्यों में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि हों, तथा इन काउंसिलों के अधिकारों में वृद्धि हो।

ब्रिटिश सरकार को सन् 1892 का इण्डियन काउंसिल एक्ट पारित करने के लिए बाध्य होना पड़ा, लेकिन इस एक्ट की धाराओं से वह कांग्रेस के नेताओं को संतुष्ट नहीं कर सकीं। कांग्रेस के नेताओं ने यह माँग की कि भारतीय धन (सार्वजनिक क्षेत्र के) पर भारतीय नियंत्रण हो, तथा उन्होंने अमरिकी स्वतंत्रता संग्राम के समय दिए गए नारे, 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं' को भी दुहराया। सन् 1905 में कांग्रेस ने स्वराज्य या भारतीयों के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत स्वशासन की माँग की। स्वशासन की माँग स्वायत्त शासित आस्ट्रेलिया और कनाडा के नमूने पर की गई थी। स्वशासन की यह माँग पहली बार जी.के. गोखले ने सन् 1905 (बनारस) में रखी थी और बाद में दादाभाई नौरोजी ने सन् 1906 (कलकत्ता) में इसे अधिक स्पष्ट शब्दों में रक्खा था।

भारत का आर्थिक दोहन

इस काल में राष्ट्रवादियों ने भारत के आर्थिक दोहन के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की। दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटिश शासन को ऐसे अनवरत और प्रतिदिन होमे वाले विदेशी आक्रमण के रूप में देखा जो कि धीरे-धीरे भारत का विनाश करता जा रहा था। राष्ट्रवादी मत अंग्रेजों को भारतीय उद्योग धंधों के विनाश के लिए जिम्मेदार ठहराता था। भारत की निर्भरता का निदान आधुनिक उद्योग के विकास से ही संभव था। सरकार इसके विकास में तटकर विषयक संरक्षण की नीति अपना कर तथा प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता व रियायतें देकर सहायक हो सकती थी।

हालाँकि, उन्होंने जब यह देखा कि सरकार इस विषय में कोई कार्य नहीं कर रही है तो उन्होंने भारतीय उद्योग के विकास के एकमात्र साधन के रूप में स्वदेशी की अवधार्रणा का, अर्थात् भारत में उत्पादित वस्तुओं के प्रयोग तथा ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का प्रचार किया। उन्होंने माँग की:

- भारत के आर्थिक दोहन को समाप्त किया जाए,
- किसानों पर कर का बोझा कम करने के लिए भू-राजस्व को कम किया जाए,
- बागानों के मजदूरों के काम करने की स्थितियो को सुधारा जाए,
- नमक कर समाप्त किया जाए, तथा
- भारतीय शासन के अत्यधिक सैनिक व्यय में कमी की जाये।

उन्होंने प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्व को पूरी तरह समझा और इस पर प्रतिबंध लगाने के हर प्रयास की भर्त्सना की। वास्तव में, प्रेस पर लगाए गए प्रतिबंधों को हटाने के लिए किया जाने वाला आंदोलन राष्ट्रवादी स्वतंत्रता आंदोलन का एक अभिन्न अंग बन गया। इन माँगों की प्रगतिशीलता, तथा इनका भारतीय मध्यम वर्ग की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से सीधा संबंध, यह स्पष्ट करता है कि प्रारंभिक वर्षों में कांग्रेस, मुख्य रूप से एक मध्यवर्गीय संस्था थी।

कांग्रेस के अधिकांश नेताओं ने आर्थिक और राजनैतिक दोनों ही कारणों से व्यापक स्तर पर रेलवे, बागानों तथा उद्योगों में विदेशी पूँजी के लगाए जाने का विरोध किया, साथ ही उन्होंने सरकार द्वारा इन क्षेत्रों में विदेशी पूँजी लगाए जाने के लिए दी गई विशेष सुविधाओं का भी विरोध किया। सेना तथा नागरिक सेवाओं (सिविल सर्विस) पर किए जाने

वाले व्यय की आलोचना करके अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन के औचित्य को ही चुनौती दे डाली। भू-राजस्व, तथा कर नीतियों की भर्त्सना करके उन्होंने ब्रिटिश प्रशासन के वित्तीय आधार को दुर्बल करने का प्रयास किया। एशिया तथा अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के लिए भारतीय सेना और भारतीय राजस्व के उपयोग को उन्होंने आर्थिक शोषण का एक और उदाहरण बताया। उनमें से कुछ ने तो ब्रिटिश शासन का कुल आर्थिक भार भारतीय राजस्व पर लादने के औचित्य पर भी आपत्ति की। आर्थिक दोहन के सिद्धांत के रूप में उन्होंने जनता के समक्ष विदेशी शोषण का एक प्रबल प्रतीक प्रस्तुत किया।

भारतीय नेतागण छुटपुट क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति के बजाय देश के समग्र आर्थिक विकास के लिए चिन्तित थे। उनके लिए सबसे बड़ा सवाल भारत की आर्थिक खुशहाली था। विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति को इसी आधार पर आँकना था कि उससे देश के आर्थिक विकास में कितनी सहायता पहुँची। यहाँ तक कि गरीबी की समस्या को भी उत्पादन में कमी और आर्थिक पिछड़ेपन के रूप में देखा गया।

राष्ट्रवादी नेताओं की इस बात के लिए तारीफ की जाएगी कि शहरी, सुशिक्षित मध्य वर्ग से सम्बद्ध होते हुए भी वे केवल अपने वर्ग के हितों के लिए ही नहीं सोचते थे। उनका दृष्टिकोण व्यापक व आम जनता की भलाई का था न कि संकुचित और संकीर्ण स्वार्थ सिद्धि का। उनकी आर्थिक नीतियाँ अवसरवादी मध्यवर्गीय संकुचित दृष्टिकोण से ऊपर थी।

आर्थिक माँगों की प्रकृति

हमने पहले भी कहा है कि कांग्रेस के प्रारंभिक नेताओं की राजनैतिक माँगें यद्यपि बहुत सीमित थीं पर उनकी आर्थिक मांगे इस क्षेत्र में बुनियादी परिवर्तन चाहती थीं। सैद्धांतिक रूप से भारतीय नेताओं ने साम्राज्यवाद की विरोधी आर्थिक नीतियों का समर्थन किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारत और इंग्लैंड के मध्य, तत्कालीन आर्थिक संबंधों में मूलभूत परिवर्तन किया जाए। उन्होंने विदेशी शासकों द्वारा भारत को कच्चा माल मुहैया करने वाले देश और ब्रिटिश उत्पादकों की मण्डी बनाए जाने के प्रयासों का, घोर विरोध किया। उन्होंने सरकार की सीमा-शुल्क, व्यापार, संचार तथा कर नीति की आलोचना की। इन्हें भारतीय उद्योग के विकास में सहायक होने के बजाए बाधक माना गया।

ब्रिटिश राज की आर्थिक बुनियाद की यह चुनौतीपूर्ण विश्लेषणात्मक आलोचना, प्रारंभिक कांग्रेस नेताओं द्वारा की गई देश की महान सेवा थी।

10.3.2 कार्य का मूल्यांकन

कांग्रेस द्वारा रखी गयी माँगों में चाहे जो भी कमियाँ रही हों, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह सच्चे अर्थों में एक राष्ट्रीय संस्था थी। इसके कार्यक्रम में ऐसी कोई भी बात नहीं थी जो किसी वर्ग विशेष के हितों के विरुद्ध हो। इसके दरवाजे सभी वर्गों और समुदायों के लिए खुले थे। यह कहा जा सकता है कि यह एक राजनैतिक दल ही नहीं था बल्कि एक समग्र आंदोलन था।

ब्रिटिश विद्वेष

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का राजनैतिक स्वर (लहजा) भले ही नम्र रहा हो, लेकिन उल्लेखनीय है कि कांग्रेस के चौथे अधिवेशन से सरकार ने इसके प्रति विद्वेषपूर्ण रवैया अपना लिया था। समय गुजरता गया लेकिन कांग्रेस को सरकार से कुछ खास हासिल नहीं हुआ। अंग्रेजों ने कांग्रेस विरोधी तत्वों को बढ़ावा दिया। उदाहरण के लिए, उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध अलीगढ़ आंदोलन को प्रोत्साहन दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में, लार्ड कर्जन के काल में कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण बहुत शत्रुतापूर्ण हो गया। उसकी (कर्जन की) सबसे बड़ी तमन्ना यह थी कि वह कांग्रेस के शांतिपूर्ण अवसान में मदद करे। लेकिन उसके द्वारा उठाए गए कदमों ने. उल्टे राष्ट्रवादियों के असंतोष को और भड़का

दिया। उसने एक तानाशाह का तरीका अपनाते हुए विश्वविद्यालयी शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण रखना चाहा और बंगाल के विभाजन की घोषणा कर दी। इसके फलस्वरूप पूरे देश में राष्ट्रीय जागरण की प्रबल लहर दौड़ पड़ी। उसके इन कार्यों ने राष्ट्रीय जागरण को प्रोत्साहित किया।

इस काल में नरम दल (उदारवादियों) के विषय में यह आम धारणा बन गई थी कि वे राजनैतिक भिक्षुक हैं जोकि याचिकाओं और प्रार्थनाओं के द्वारा अंग्रेज सरकार से छोटी-मोटी रियायतों की भीख माँगते रहते हैं। जैसा कि आप पहले भी पढ़ चुके हैं, नरम दल (उदारवादियों) ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नाजुक दौर में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

वास्तव में नरम दल (उदारवादियों) की विचारधारा का विकास उस परंपरा का परमोत्कर्ष था जो राजा राममोहन राय से प्रारंभ हुई थी, जिन्होंने समकालीन यूरोप की उदारवादी, बौद्धिक प्रवृत्ति का अनुगमन किया था। उनके द्वारा प्रस्तुत सुधारों के विचार ने ही आगे चलकर शुरूआत के वर्षों में, कांग्रेस की माँगों का आधार उपलब्ध किया। राजा राममोहन राय की ही भाँति कांग्रेस के प्रारंभिक नेता भी ब्रिटिश प्रशासन की उपस्थिति राजनैतिक प्रगति के लिए आवश्यक समझते थे। स्वाभाविक रूप से उनकी भाषा संयत थी, और उनकी आकांक्षाएँ सीमित थीं। लेकिन वक्त के साथ-साथ नरम दल (उदारवादियों) ने अपना दृष्टिकोण भी बदलना शुरू कर दिया। सन् 1905 तक गोखले स्वशासन को लक्ष्य बताने लगे और दादाभाई नौरोजी ने सन् 1906 में 'स्वराज' को कांग्रेस का लक्ष्य माना।

इसके बाद भी नरम दल कांग्रेस में गरम दल के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण संकट में पड़ गया। ब्रिटिश सत्ता को भी उसकी सदाशयता पर संदेह होने लगा। राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने वालों में युवा वर्ग को गरम दल आकर्षित कर रहा था। नरम दल अपनी सदाशयता, सरकार के प्रति निष्ठा और देश-भक्ति के बावजूद ब्रिटिश नौकरशाही के दाँवपेंचों के समक्ष प्रभावहीन हो गया। इस बदली हुई परिस्थिति में गरम दल ने कांग्रेस पर अपना प्रभाव अच्छी तरह से स्थापित कर लिया और वह कांग्रेस की गतिविधियों का केंद्र बन गया।

बोध प्रश्न 2

1 सन् 1885-1905 के मध्य कांग्रेस की पाँच मुख्य माँगें लिखिए।

1 ....
2 ....
3 ....
4 ....
5 ....

2 प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश राज की आर्थिक नीतियों की क्या समीक्षा की थी?

....
....
....
....
....
....
....

10.4 गरम दल (उग्र दल)

भारतीय राष्ट्रीय मंच पर बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में उग्रवाद का उदय अचानक नहीं हो गया था। वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप से सन् 1857 के विद्रोह से ही, धीरे-धीरे इस विचारधारा का विकास होने लगा था।

10.4.1 गरम दल का सैद्धान्तिक आधार

गरम दल के अनुसार सन् 1857 के विद्रोह के राष्ट्रवादी उद्देश्य स्वधर्म तथा स्वराज की स्थापना थे। उदारवादियों (नरम दल) ने जो बुद्धिवाद और पाश्चात्य आदर्शों को अपनाया था, उसके कारण वे भारत में जनसाधारण से बहुत दूर चले गए थे। इसीलिए अपने उच्च आदर्शों के बावजूद वे जनसाधारण पर अपना प्रभाव जमाने में असफल रहे। यह जरूरी था कि कोई वर्ग जनता और राजनैतिक नेतृत्व के बीच की खाई को भरता। सभी पाश्चात्य वस्तुओं की प्रंशसा और उसकी नकल करने की प्रवृत्ति के स्थान पर उन्नीसवीं शताब्दी के नवें दशक में एक ऐसा आंदोलन चला जिसमें लोगों को अपनी प्राचीन सभ्यता की ओर लौटने के लिए कहा गया। इस प्रकार की भावना दबे तौर पर तो पहले भी थी और सन् 1857 में यह अचानक उभर कर सामने आ गई थी। लेकिन पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त समुदाय, आमतौर पर भारतीय जीवन की मुख्य धारा से अलग रहा और इस प्रवृत्ति से भी अछूता रहा। छोटे से शिक्षित समुदाय और आम जनता में जो खाई थी, उसको पाटने का ऐतिहासिक कार्य, स्वामी रामकृष्ण परमहंस और उनके अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त शिष्य स्वामी विवेकानंद तथा वैदिक साहित्य में निष्णात स्वामी दयानंद और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने किया। श्रीमती एनीबीसेन्ट की समन्वयवादी थियोसोफिकल सोसायटी ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया। इन समाज सुधार आंदोलनों ने राजनैतिक उग्रवाद को प्रोत्साहन दिया। अपनी संस्कृति, धर्म और राजतंत्र के प्रति लोगों में स्वाभाविक लगाव था। राजनैतिक उग्रवादी, जिन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत से प्रेरणा ग्रहण की थी, परम राष्ट्रवादी थे और यह चाहते थे कि भारत सब देशों से, समान स्तर पर, और आत्मसम्मान के साथ मिले। उनमें आत्मसम्मान कूट-कूट कर भरा था और वे अपना सर ऊँचा रखना चाहते थे। वे नरम दल (उदारवादियों) को अंग्रेजों का चापलूस व मुसाहिब मानते थे इसीलिए उन्होंने उनका विरोध किया। उग्रवादियों की दृष्टि में उद्धार केवल राजनीति तक सीमित नहीं था बल्कि इसका अर्थ कहीं अधिक व्यापक और गूढ़ था। उनके लिए इसका अर्थ जीवन के समस्त व्यापारों में नवस्फूर्ति व नवशक्ति का संचार करना था। वे समझते थे कि शासक और शासित वर्ग में शक्ति परीक्षण अवश्यम्भावी है। उनका कहना था कि उनके सपनों के नए भारत के निर्माण में अंग्रेजों का कोई योगदान नहीं होगा।

गरम दल देश के तीन भागों में अधिक सक्रिय था। महाराष्ट्र दल के नेता थे तिलक, बंगाल दल के नेता थे विपिनचंद्रपाल और अरविंद तथा पंजाब दल का नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे। बंगाल के उग्रवादी बंकिमचंद्र की विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। बंकिम एडमण्डबर्क की भाँति उदार पुरातनपंथी थे। वे भूतकाल से संबंध विच्छेद नहीं करना चाहते थे, क्योंकि उनकी दृष्टि में इससे समस्याएँ सुलझने के बजाए और भी ज्यादा उलझ जातीं। वे सुधारों को ऊपर से थोपने के विरोधी थे। उनका विचार था कि सुधारों से पूर्व नैतिक और धार्मिक पुनरुत्थान आवश्यक है, और यह पुनरुत्थान केवल धर्म के मूल सिद्धांतों के आधार पर ही संभव है। बंकिम ने उदारवादियों की भर्त्सनापूर्ण आलोचना करके उग्रवादियों को इस विषय में दिशा प्रदान की।

उग्रवादियों का राष्ट्रवाद भावुकता से परिपूर्ण था। राष्ट्रवाद की इस प्रेरणादायक धारणा में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आदर्शों, सभी का समावेश था। यही संदेश लेकर विवेकानंद पश्चिम गए थे और उनकी सफलता ने भारतीयों में दृढ़ आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति का संचार किया था। अरविंद ने तो देशभक्ति को ऊँचा उठाकर मातृ वंदना के समकक्ष रख दिया था। एक पत्र में उन्होंने कहा था, "मैं अपने देश को अपनी माँ मानता हूँ। मैं उसकी आराधना करता हूँ। मैं उसकी स्तुति करता हूँ।"

अरविंद दयानंद सरस्वती की शिक्षाओं से बहुत प्रभावित हुए थे। दयानंद की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव नहीं के बराबर था। अरविंद ने दयानंद को देश का सबसे बड़ा सुधारक माना क्योंकि उन्होंने देश को एक सुनिश्चित मार्ग सुझाया था। इस प्रकार बंकिमचंद्र, दयानंद और विवेकानंद आदि ने वह दार्शनिक आधार प्रदान किया जिस पर उग्रवादियों ने अपना राजनैतिक कार्यक्रम तैयार किया था।

10.4.2 गरम दल की कार्रवाई

तिलक ने इस बात का विरोध किया कि, एक विदेशी सरकार, जनता के निजी और व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करे। सन् 1891 के विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने वाले विधेयक को लेकर उनका सुधारकों से झगड़ा हो गया। उन्होंने सन् 1893 में गणपति महोत्सव प्रारंभ किया। सन् 1893-94 में अरविंद ने 'इन्दुप्रकाश' पत्र में 'न्यू लैम्प्स फॉर ओल्ड' का प्रकाशन किया।

तिलक ने सन् 1895 में पूना में कांग्रेस के पण्डाल में 'नेशनल सोशल कांफ्रेन्स' को अपना अधिवेशन नहीं करने दिया और इस प्रकार उसे चुनौती दी। 'नेशनल सोशल कांफ्रेन्स' उदारवादियों के प्रभाव में थी। इसी वर्ष (सन् 1895) पूना सार्वजनिक सभा पर भी उदारवादियों के स्थान पर उग्रवादियों का प्रभुत्व हो गया। शिवाजी उत्सव का आयोजन पहली बार 15 अप्रैल 1896 को हुआ। 4 नवंबर, 1896 को दक्षिण सभा की स्थापना से महाराष्ट्र में नरम दल और गरम दल का पूरी तरह अलगाव हो गया, लेकिन पूरे भारत में अभी इन दोनों दलों में मतभेद, अलगाव की स्थिति तक नहीं पहुँचे थे। उदाहरण के लिए, बंगाल के उग्रवादियों के नेता विपिनचंद्र पाल अब भी उदारवादियों के खेमे में थे। सन् 1897 में उन्होंने लिखा था, "मैं ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठावान हूँ, क्योंकि मैं समझता हूँ कि ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा और अपने देश व अपने देशवासियों के प्रति निष्ठा एक ही बात है और मैं यह भी मानता हूँ कि भगवान ने हमारे उद्धार के लिए इस सरकार को हम पर शासन करने के लिए भेजा है। सन् 1902 में जाकर ही उनके विचारों में परिवर्तन आया, और उन्होंने लिखा, "कांग्रेस भारत में, और लंदन में उसकी ब्रिटिश कमेटी, दोनों ही भिक्षा माँगने वाली संस्थाएँ हैं।"

वर्ष १. पुणें:- मंगळवार तारीख २५ जानेवारी १८८१ अंक ४.

10. अखबार केसरी

कांग्रेस की नरम और अस्थिर नीतियों के कारण ही लाला लाजपतराय इसके कार्यक्रमों के प्रति आकर्षित नहीं हुए। सन् 1893 से लेकर सन् 1900 तक उन्होंने कांग्रेस के किसी भी अधिवेशन में भाग नहीं लिया। वे इस काल में कांग्रेस के नेताओं के विषय में यही सोचते थे कि उन्हें देश की चिंता से अधिक अपनी ख्याति और शान की परवाह है।

जहाँ एक ओर एक के बाद एक भ्रांतियों और उलझनों ने उदारवादियों की स्थिति कमजोर कर दी वहाँ दूसरी ओर रूस पर जापान की विजय (1904-1905) ने पूरे एशिया में नवीन उत्साह का संचार किया। इससे पूर्व सन 1896 में इथोपिया (अफ्रीकी राष्ट्र) ने इटली की

सेना को पराजित किया था। एशियायी और अफ्रीकी राष्ट्रों की इन विजयों ने यूरोप की श्रेष्ठता का जो भ्रम था उसे तोड़ दिया और उसने भारतीयों में नया आत्मविश्वास जगा दिया था।

10.5 नरम दल तथा गरम दल : एक विश्लेषण

नरम दल तथा गरम दल में बहुत सी बातें एक सी थीं लेकिन उनके राजनैतिक दृष्टिकोण और कार्य प्रणाली में अंतर भी था। हम इस भाग में नरम दल और गरम दल के मध्य उन मतभेदों पर विचार करेंगे जिनके कारण सन् 1907 में, सूरत में, कांग्रेस का विभाजन हुआ। इस बात पर भी विचार किया जाएगा कि इस विभाजन में राष्ट्रीय आंदोलन को किस प्रकार प्रभावित किया।

10.5.1 मतभेद

तिलक ने कहा था कि, जहाँ तक नौकरशाही से सुधारों की अपील करने की बात थी, पुरानी (नरम दल) और नई (गरम दल) पार्टियाँ दोनों ही इसे प्रभावहीन और निरर्थक मानती थीं। लेकिन पुरानी पार्टी ब्रिटिश राष्ट्र से अपील करने की सार्थकता में विश्वास करती थी परंतु नई पार्टी इसमें विश्वास नहीं रखती थी। नरम दल की ही भाँति तिलक भी यह मानते थे कि अंग्रेजी शासन में उद्योगों का विनाश हुआ है तथा देश का धन चूस कर बाहर भेज दिया गया है तथा भारतीयों को गरीबी की सबसे नीची रेखा तक पहुँचा दिया गया है लेकिन तिलक का विश्वास था कि याचिकाओं के द्वारा इन समस्याओं का निदान नहीं हो सकता था। गरम दल यह मानता था कि अपने घर की चाबी स्वयं भारतीयों के पास होनी चाहिए और स्वशासन भारतीयों का लक्ष्य होना चाहिए। नया दल चाहता था कि भारतीय यह समझ जाएँ कि उनका भविष्य उनके अपने हाथों में है और वे तब तक आजाद नहीं हो सकते जब तक कि वो खुद आजाद होने का दृढ़ निश्चय नहीं कर लेते।

तिलक यह नहीं चाहते थे कि स्वशासन प्राप्त करने के लिए भारतीय शस्त्रों का सहारा लें, बल्कि वो यह चाहते थे कि भारतीय अपनी आत्मत्याग और आत्मसंयम की शक्ति का इस प्रकार विकास करें जिससे विदेशी ताकत को उन पर राज्य करने में सहायता न मिले।

तिलक ने देशवासियों को सलाह दी कि वे अपनी अदालतें खुद लगाएँ (जैसे ग्राम पंचायत आदि) और जब समय की माँग हो तो सरकार को कर देना भी बंद कर दें। तिलक ने यह दावा किया, "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं इसे लेकर रहूँगा।"

अरविंद का दार्शनिक उग्रवाद तिलक से भी ऊँचा लक्ष्य रखता था। उनके अनुसार भारतीय सरकार भ्रष्ट पाश्चात्य प्रभाव से दूषित थी। इस भ्रष्टाचार से बचने के लिए भारत की वर्तमान शोचनीय परिस्थितियों को बदलना होगा और अपनी महान व श्रेष्ठ संस्कृति की ओर लौटना होगा। उनके विचार से राष्ट्रवाद के लक्ष्य थे:

i) भारत के लिए स्वराज प्राप्त करना, [illegible] [illegible] [illegible]

ii) यह सुनिश्चित किया जाए कि जब स्वराज प्राप्त किया जाए तो वह स्वदेशी [illegible], न कि यूरोप से आयातित किसी विदेशी शैली का। इसीलिए उनकी दृष्टि [illegible] की प्रथम अभिव्यक्ति स्वदेशी भावना में हुई। यह स्वदेशी भावना केवल विदेशी वस्तुओं के प्रयोग के विरुद्ध नहीं थी बल्कि विदेशी आचार-विचार, व्यवहार, वेशभूषा, शिष्टाचार तथा विदेशी शिक्षा के विरुद्ध भी थी और इसका उद्देश्य देशवासियों को अपनी सभ्यता की ओर उन्मुख करना था।

उपर्लिखित विवेचन से यह मालूम होता है कि यद्यपि गरम दल ने अपेक्षाकृत अधिक आक्रामक और तीखी भाषा का प्रयोग किया, लेकिन जहाँ तक लक्ष्य का प्रश्न है, उसमें और नरम दल में कोई विशेष अंतर नहीं था।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, गोखले ने अपने अध्यक्षीय भाषण (बनारस, 1905) तथा दादाभाई नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण (कलकत्ता, 1906) में क्रमशः स्वशासन और स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य बताया था, दोनों दलों के अंतर लक्ष्य प्राप्त करने के तरीके में था।

10.5.2 व्यक्तित्वों की टकराहट

दृष्टिकोण तथा प्राथमिकताओं में उपर्लिखित अंतर के अतिरिक्त नरम दल और गरम दल का मतभेद तिलक के व्यक्तित्व को लेकर था। तिलक और गोखले दोनों ही पूना के थे। तिलक उग्रवादी थे। एक प्राच्यवादी के रूप में वे सरकार की हर संभव तरीके से बुराई करते थे। उनकी लेखनी बड़ी सशक्त थी और अपने पत्र 'मराठा' और 'केसरी' के माध्यम से उन्होंने जनमानस को अत्याधिक प्रभावित किया था।

गोखले विनम्र व मृदुभाषी थे। भारतीय वित्तीय समस्याओं पर उनकी अच्छी पकड़ थी। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कांउसिल में उनका कौशल देखते ही बनता था। वे सरकार की उपलब्धियों (खासतौर पर आर्थिक क्षेत्र में) के दावों के खोखलेपन को दिखाने में निष्णात थे। लोगों की दृष्टि में वह ऑनरेबल मिस्टर गोखले (महामना गोखले) थे। मातृभूमि की सेवा के लिए उन्होंने समर्पित कार्यकर्त्ताओं के दल को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से पूना में सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी की स्थापना की थी।

सोसायटी के सदस्यों को शपथ लेकर निर्धनता का जीवन व्यतीत करना था तथा उन्हें आचरण की शुद्धता का कठोरता से पालन करना पड़ता था। उन्हें कठोर श्रम करना पड़ता था और वेतन के नाम पर सिर्फ गुजारे भर के लिए पैसा मिलता था।

तिलक और गोखले के मतभेद जानने के लिए थोड़ा पीछे जाना पड़ेगा। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में पूना में दोनों व्यक्तित्वों की जोरदार टकराहट हुई थी। तिलक और जी.जी. आगरकर के मध्य वैमनस्य हो गया था, हालाँकि दोनों ही डेकेन एजुकेशन सोसायटी में सहकर्मी थे। अंत में तिलक को इस सोसायटी से निकाल दिया गया। इसके बाद से तिलक के अनुयायियों और उनके विरोधियों में निरंतर लड़ाई होती रही। तिलक के विरोधी महादेव गोबिन्द रानाडे और गोखले के अनुयायी थे और कांग्रेस के कार्यक्रमों में उन्हें बंबई के फिरोजशाह मेहता का समर्थन प्राप्त था। गोखले को कांग्रेस संगठन का भी समर्थन प्राप्त था। जैसे-जैसे नरम दल की लोकप्रियता और प्रभाव में कमी होती गई और उग्रवाद के विकास के कारण गरम दल देशवासियों के दिलोदिमाग पर कब्जा करता गया वैसे-वैसे दोनों प्रतिद्वन्द्वी दलों में महाराष्ट्र और विशेषकर पूना में, संघर्ष, कटु से कटुतर और स्पष्ट से स्पष्टतर होता चला गया।

पूरे भारत में उत्तेजना व्याप्त हो रही थी। अरविंद के नेतृत्व में बंदे मातरम् की गूंज न सिर्फ ब्रिटिश सरकार के भारत पर शासन करने के अधिकार को चुनौती दे रही थी बल्कि उसने वयोवृद्ध नेताओं को भारतीय जनता की ओर से बोलने के अधिकार को भी चुनौती दे डाली थी। बंगाल से बाहर के नेताओं में तिलक पहले नेता थे, जिन्होंने बंगाल में व्याप्त उत्तेजना तथा उसकी निहित शक्ति को पहचाना था। तिलक की दृष्टि में बंगाल का विभाजन, अंग्रेजों की भूल तो थी लेकिन उससे कहीं ज्यादा वह एक ऐसा अवसर था जब भारतीय अपनी शक्ति (संगठन व एकता के द्वारा) बढ़ा सकते थे। उन्होंने बंगाल विभाजन के विरुद्ध आंदोलन को अपना समर्थन प्रदान किया और बंगाल में उभरते हुए उग्रवादी नेताओं को प्रोत्साहित किया। सन् 1905 के (बनारस में) कांग्रेस अधिवेशन से ही, गोखले ने तिलक और बंगाल के उग्रवादियों का गठबंधन देख लिया था। तिलक और पाल के इस गठबंधन ने सरकार के लिए तो एक विकट समस्या खड़ी कर ही दी थी, साथ ही साथ कांग्रेस के अनेक नेताओं के लिए यह एक सरदर्द बन गया था। तिलक को अगर विद्रोही

नहीं तो कम से कम एक असंतुष्ट नेता के रूप में अवश्य देखा गया। फिरोजशाह मेहता, डी.ई. वाचा तथा पूरा बंबई गुट 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में उठने वाले विवादों के समय से ही तिलक को अविश्वास की दृष्टि से देखता था। ये आपसी मतभेद आंशिक रूप से स्वभाव की भिन्नता के कारण थे। कम से कम पिछले पंद्रह सालों से कांग्रेस संगठन में शीत युद्ध चल रहा था जिसमें एक ओर मेहता के नेतृत्व वाला गुट था और दूसरी ओर तिलक और उनके अनुयायी थे।

बोध प्रश्न 3

1 उग्रवाद के उदय का सैद्धान्तिक आधार क्या था?

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 उग्रवादियों (गरम दल) का राजनैतिक कार्यक्रम क्या था?

....
....
....
....
....
....
....

10.5.3 खुली लड़ाई और फूट

बंबई के उदारवादियों में तिलक का काफी विरोध था। वह एक चतुर रणनीतिज्ञ थे और उस अवसर की प्रतीक्षा में थे जब वह अपनी चाल चल सकें। सन् 1905 में बनारस के कांग्रेस अधिवेशन में तिलक ने जो बंगाल के उग्रवादियों के साथ गठबंधन किया था उससे उन्हें कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन (1906) में बड़ा लाभ पहुँचा। कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन को लेकर गोखले भी पहले से ही संशकित थे। उन्हें गड़बड़ी की आशंका थी। यह पारस्परिक अविश्वास कांग्रेस के लिए अच्छा शगुन नहीं था।

सबसे पहले अध्यक्ष पद को लेकर विवाद उठा। पाल और अरविंद तिलक को अध्यक्ष बनाना चाहते थे लेकिन नरम दल उन्हें अध्यक्ष के पद पर स्वीकार नहीं करना चाहता था। अपनी बात मनवाने के लिए नरम दल ने एक असाधारण चाल चली। उन्होंने बिना स्वागत समिति (रिसैप्शन कमेटी) से परामर्श किए, दादाभाई नौरोजी को अध्यक्ष पद स्वीकार करने के लिए तार भेज दिया। जब दादाभाई नौरोजी ने अध्यक्ष बनाए जाने की दावत कुबूल कर ली तो गरम दल को वस्तुस्थिति स्वीकार करनी पड़ी। इस तरह जब तिलक को अध्यक्ष बनाये जाने की कोशिश नाकामयाब हो गई तो गरम दल — तिलक, अरविंद, पाल, अश्विनी कुमार दत्त, जी.एस. खपरडे आदि ने कांग्रेस के अंदर एक प्रभावशाली गुट का निर्माण किया ताकि वे अपनी बात मनवा सकें। कांग्रेस में गरम दल

का बहुमत था और उसे पर्याप्त स्थानीय समर्थन भी प्राप्त था। वातावरण में बड़ा तनाव था तथा सब्जैक्ट्स कमेटी की बैठक बड़ी कोलाहल पूर्ण हुई। प्रस्तावों पर विचार-विमर्श हुआ और गरम दल के दबाव के कारण उनको संशोधन करने पड़े। फिरोजशाह मेहता को विशेषरूप से उनके क्रोध का निशाना बनना पड़ा। मेहता, मदनमोहन मालवीय तथा गोखले को प्रश्नों की बौछार से तंग किया गया। अंत में जल्दी-जल्दी एक समझौता किया गया और बंगाल विभाजन, स्वदेशी, तथा बहिष्कार विषयक प्रस्तावों को फिर से लिखा गया, जिसके फलस्वरूप उद्घाटन अधिवेशन में वे बिना किसी बाधा के पारित हो गए। लेकिन दोनों प्रतिद्वन्द्वी दलों के बीच सौहार्द स्थापित नहीं हो सका। खतरा कुछ समय के लिए टल तो गया था पर कटुता अपना निशान छोड़ गई थी।

यद्यपि कलकत्ता कांग्रेस (1906) में उग्रवादी तिलक को अध्यक्ष पद पर चुनवाने में असफल रहे थे, लेकिन वहाँ जो कुछ उन्होंने हासिल किया था, उससे वे संतुष्ट थे। वे एक मजबूत, सुसंगठित और शक्तिशाली दल के रूप में उभरकर सामने आये थे। उन्होंने उन सभी कोशिशों को नाकामयाब कर दिया जो उनकी नजर में कांग्रेस के कार्यक्रम को कमजोर बनाने के लिए की गई थीं। कलकत्ते से जाते समय नरम दल खुद को भ्रमित, अपमानित और बेचैन महसूस कर रहा था। सबसे ज्यादा परेशानी उन्हें गरम दल द्वारा किए गए उद्दण्ड व्यवहार से थी।

नरम दल और गरम दल दोनों ने ही स्वदेशी आंदोलन में भाग लिया परंतु दोनों के स्वदेशी विषयक दृष्टिकोण में भारी मतभेद था। तिलक, पाल और अरविंद के लिए बहिष्कार का दोहरा आशय था। भौतिक रूप से ये मानचेस्टर पर आर्थिक दबाव के रूप में होना था जिसकी प्रतिक्रिया भारत सरकार पर मानचेस्टर द्वारा दबाव के रूप में होनी थी। आध्यात्मिक स्तर पर यह आत्मपीड़न या आत्मप्रताड़ना की एक धार्मिक रीति थी। गोखले के लिए स्वदेशी मुख्य रूप से एक आर्थिक संदेश था— भारतीय उद्योग में नवजीवन के संचार का संदेश। यह दृष्टिकोण उन्होंने रानाडे से प्राप्त किया था। सुरेन्द्र नाथ की दृष्टि में भावना की दृष्टि से स्वदेशी आंदोलन एक संरक्षणवादी आंदोलन था। इस आंदोलन ने जनता का इसलिए अभिभूत किया क्योंकि उसकी दृष्टि में इससे "उसके लिए भौतिक समृद्धि के नये युग का सवेरा होने वाला था।" तिलक और लाजपतराय की दृष्टि में यह राजनैतिक आंदोलन का एक हथियार होने के साथ-साथ आत्म सहायता, दृढ़ निश्चय और त्याग का नैतिक प्रशिक्षण भी था। अरविंद स्वदेशी को स्वायत्तता तथा समृद्धि के सांसारिक अर्थ में नहीं लेते थे बल्कि वे स्वदेशी के माध्यम से इस विश्वास को फिर से जगाना चाहते थे कि भारत ही जगद्रक्षक की भूमिका निभा सकता है। इस प्रकार स्वदेशी को उग्रवादियों ने उदारवादियों की तुलना में अधिक व्यापक रूप में देखा।

स्वभावगत तथा सैद्धान्तिक मतभेद और व्यक्तित्वों की टकराहट ने दोनों प्रतिद्वंद्वी दलों में कटुता उत्पन्न की। गरम दल की अनवरत आलोचना ने नरम दल को सावधान कर दिया। गरम दल पहले ही बंगाल, महाराष्ट्र, बरार और पंजाब को अपने प्रभाव में ले चुका था, अब नरम दल को भय था कि शेष भारत भी उनके कब्जे में आ जाएगा। इसलिए वे हताश होकर अपने संरक्षण के लिए कुछ भी करने को तैयार थे।

कलकत्त में यह निश्चित हो गया था कि कांग्रेस का अगला अधिवेशन नागपुर में होगा। नरम दल को यह विश्वास था कि नागपुर में उसका बहुमत होगा। आगामी अधिवेशन (1907) में कांग्रेस के अध्यक्ष का चुनाव, नरम दल और गरम दल के बीच शक्ति परीक्षण के अवसर के रूप में विकसित हुआ। नरम दल तिलक को अध्यक्ष न बनने देने के लिए कृतसंकल्प था। इस तरह का रुख एक अपशकुन था। नरम दल यह तय कर चुका था कि अगर तिलक का अध्यक्ष पद के लिए चुनाव हो गया और कांग्रेस पर गरम दल का प्रभुत्व हुआ तो वह कांग्रेस को ही नष्ट कर देगा।

नरम दल तिलक को अध्यक्ष न बनने देने के विषय में एकमत था लेकिन अध्यक्ष पद पर कौन चुना जाए, इस विषय में एकमत नहीं था। गोखले प्रतिष्ठित वकील और प्रभावशाली वक्ता, रासबिहारी घोष को अध्यक्ष बनाना चाहते थे। लेकिन नागपुर में जब नरम दल ने अपनी स्थिति निराशाजनक देखी तो फिरोजशाह ने अधिवेशन का स्थान बदलकर सूरत

कर दिया, क्योंकि उनके विचार से सूरत में उनकी मर्जी के अनुसार अधिवेशन चल सकता था। गरम दल ने परिवर्तन के इस निर्णय को पसंद नहीं किया। तनावपूर्ण वातावरण और दोनों दलों के द्वारा असंगत भाषा के प्रयोग ने सूरत में उठने वाले संकट की अवश्यंभाविता की ओर संकेत किया। रासबिहारी घोष अध्यक्ष पद के लिए चुने गए। दोनों दलों के पारस्परिक संबंध और भी खराब हो गए। सभा में घोष के अध्यक्ष पद के चुनाव की घोषणा के समय खुलेआम लड़ाई शुरू हो गई। इस विषय में तिलक को अपने विचार व्यक्त करने की अनुमति नहीं दी गई। इस बात ने तिलक के अनुयायियों को हंगामा मचाने का मौका दे दिया। आरोप प्रत्यारोप लगाए गए, डंडों का प्रदर्शन भी हुआ और पगड़ियाँ उछाली गईं, कुर्सियाँ भी टूटी और कुछ लोगों को चोटें भी आई। इस हादसे की जिम्मेदारी के लिए एक दूसरे पर आरोप और प्रत्यारोप लगाए गए। अब बहस करने से कोई फायदा नहीं था। लेकिन यह सत्य था कि इस आंतरिक कलह ने जो स्वरूप धारण कर लिया था वह सबके लिए चिंता का विषय था।

10.5.4 फूट के परिणाम

इस फूट के लिए चाहे कोई भी जिम्मेदार हो और चाहे इसके जो भी कारण रहे हों, यह निश्चित है कि यह देश के लिए एक महान दुर्घटना थी। गोखले इस दुर्घटना की भयावहता को समझते थे। ब्रिटिश नौकरशाही की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। वाइसरॉय लॉर्ड मिन्टो ने आहलादपूर्ण स्वर में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट लॉर्ड मोर्ले को बतलाया कि, "कांग्रेस का ढ़हना (सूरत की फूट) हम सबके लिए एक महान विजय है।" लेकिन मोर्ले वस्तुस्थिति को ज्यादा अच्छी तरह से समझते थे। एक भविष्यवक्ता की भाँति उन्होंने वाइसरॉय को बताया कि, "भले ही इस समय गरम दल का पतन हो गया है लेकिन अन्ततः कांग्रेस पर गरम दल का आधिपत्य हो जाएगा।" यह फूट कांग्रेस के लिए विशेषकर हानिकारक थी। साथ ही साथ इसने आमतौर पर राष्ट्रीय आंदोलन पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला था। यह कहा जा सकता है कि, नरम दल कांग्रेस का दिमाग था तो गरम दल उसका हृदय; नरम दल उसका कानून था तो गरम दल उसकी अंतः प्रेरणा। दोनों दलों का मिलजुल कर काम करना कांग्रेस के कार्यकलापों और राष्ट्रीय आंदोलनों के विकास, दोनों के लिए ही परम आवश्यक था। गरम दल के निर्वासन से नरम दल को कुछ भी हासिल नहीं होना था। लगभग दस वर्ष तक नरम दल उस स्थिति में नहीं आ सका जिसमें वह अंग्रेजों का प्रभावशाली ढंग से विरोध कर सकता। सन् 1916 के बाद ही जब कांग्रेस में गरम दल का पुनःप्रवेश हुआ और नरम दल कांग्रेस में प्रभावहीन हुआ (1918), तभी कांग्रेस में एक बार फिर से नई जान आई। लेकिन यह एक नई कहानी थी। गोखले के राजनैतिक शिष्य मोहनदास करमचंद गांधी ने गरम दल के कार्यक्रम को लेकर अपना आंदोलन प्रारंभ किया। उन्होंने विवेक और विश्वास तथा न्याय और अंतःप्रेरणा के समन्वय पर जोर दिया। उन्होंने भारतीय जनता की चिरस्थायी शक्ति का प्रतिनिधित्व किया तथा कांग्रेस को नया रूप देकर उसे फिर से गतिमान बनाया। गांधी ने राजनैतिक आंदोलन के क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात किया।

बोध प्रश्न 4

1 सन् 1907 में, सूरत में हुई कांग्रेस में फूट की परिस्थितियाँ क्या थीं?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2 सूरत की फूट किस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में बाधक हुई?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

10.6 सारांश

कांग्रेस के पहले पच्चीस वर्ष बहुत महत्वपूर्ण थे क्योंकि इसी काल में राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य माँगें प्रस्तुत की गई थी। प्रारंभ में कांग्रेस ने हल्की-फुल्की माँगें रखी और उन्हें प्राप्त करने के लिए नम्र एवं संवैधानिक तरीका अपनाया। प्रारंभिक नेताओं ने यह विश्लेषण करके दिखलाया कि किस प्रकार एक सुनियोजित ढंग से अंग्रेज भारत का धन चूस रहे हैं। उन्होंने समझ लिया था कि इसी आर्थिक दोहन से जनता की गरीबी लगातार बढ़ती चली जा रही थी। कुछ वर्षों में ही कांग्रेस में एक वर्ग उदारवादियों के तरीकों को प्रभावहीन मानने लगा। यह वर्ग अंग्रेजों का सक्रिय विरोध करना चाहता था। उसकी मुख्य माँग थी स्वराज (स्वशासन) इस आंतरिक कलह ने सन् 1907 में कांग्रेस का विभाजन करा दिया। कुछ समय के लिए इस फूट से कांग्रेस कमजोर पड़ गई।

अपने पहले चरण में कांग्रेस की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि यह स्वदेशी आंदोलन (जिसे बंगाल विभाजन के विरोध में प्रारंभ किया गया था) के माध्यम से भारतीय जनता के महत्वपूर्ण वर्गों को, अंग्रेजों के विरुद्ध संघटित कर सका।

10.7 शब्दावली

समावेश : एक साथ या एक जगह रहना, एक वस्तु का दूसरे वस्तु के अन्तर्गत होना

पेशा : जीविका के लिए किये जाने वाला धंधा व्यवसाय

अभिजात्य वर्ग : कुलीन वर्ग

सवाशयता : सज्जन, भला-मानस

नौकरशाही : वह शासन जिसमें सब अधिकार बड़े-बड़े राजकर्मचारियों के हाथों में रहते हैं (व्यूरोक्रेसी)

रियायत : छूट, कमी

अवसान : समाप्ति
अनुगमन : पीछे चलना
समन्वयवादी : कार्य और कारण की संगति करके चलने वाला, मिलान करने वाला
विरासत : उत्तराधिकार से मिला हुआ
आत्मसंयम : अपनी इच्छाओं को वश में रखने वाला
उन्मुख : उत्कंठित, उत्सुक, उद्यत
प्राच्यवादी : पूर्व दिशा का, पुराने विचारों में विश्वास रखने वाला
मृदुभाषी : मधुर बोलने वाला, जिसका कथन सुनने में प्यारा लगे।
वैमनस्य : शत्रुता
विकट : कठिन, मुश्किल
शगुन : (शकुन) किसी विशेष कार्य के आरंभ में दिखाई देने वाले शुभ या अशुभ लक्षण
सौहार्द : सज्जनता, मित्रता
आध्यात्मिक : आध्यात्म या आत्मा संबंधी। ब्रहम और जीव संबंधी
कृतसंकल्प : किया हुआ संकल्प
अवश्यंभाविता : जो अवश्य होने वाला हो, जो टले नहीं
निर्वासन : गाँव, नगर, देश आदि से दंड स्वरूप बाहर निकाल देना। देश निकाला
सूत्रपात : किसी कार्य का प्रारंभ होना या प्रारंभ होने का पूरा आयोजन होना

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 देखिए भाग 10.1
2 देखिए उपभाग 10.2.1

बोध प्रश्न 2

1 देखिए उपभाग 10.3.1
2 देखिए उपभाग 10.3.1

बोध प्रश्न 3

1 देखिए उपभाग 10.4.1
2 देखिए उपभाग 10.4.2

बोध प्रश्न 4

1 देखिए उपभाग 10.5.3
2 देखिए उपभाग 10.5.4